(2014) 12 एस.सी.आर.

अजय कुमार पाल

बनाम

भारत संघ और अन्य

(रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 128/2014)

12 दिसंबर, 2014

[दीपक मिश्रा, उ.पे. उमेश ललित और

आर.एफ. नरीमन, जे.जे.]

भारतीय संविधान, 1950--- अनुच्छेद 6, 21 और 32--- रिट पिटीशन---- मेनटेनेबिलिटी----उच्चतम न्यायालय तक मृत्यु दण्ड की पुष्टि--- याचिका कर्ता ट्रायल कोर्ट द्वारा मृत्यु दण्ड अधिरोपित करने के दिन से लगातार एकांत क़ैद में रखा गया--- दया याचिका--- के निष्पादन में 3 वर्ष 10 महीने की देरी----रिटपिटीशन मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में तबदील करने की इप्सा----दया यचिका के निष्पादन में ग़ैरमामूली देरी के आधार पर---- निर्धारणः --अनुच्छेद 32 के अंतर्गत याचिका पोषणीय (मेनटेनेबूल) है---दया याचिका के निष्पादन में देरी ,ग़ैरमामूली दरी, के अभिवक्ति में आता है--- याची को दया याचिका के निष्पादन से पूर्व एकांत क़ैद में अलग कर देना पूर्ण रूपेण अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है---- मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में तबदील किया गया---मृत्यु दण्ड---- कारागार अधिनियम,1894---धारा.30(3).

पिटीशन स्वीकृत करते हुए, न्यायालय ने...

निर्धारित कियाः–1. ट्रायल कोर्ट द्वारा मृत्यु दण्ड की सज़ा 09.04.2007 को दी गई जो 16.03.2010 को पुर्णता प्राप्त किया. याची की दया याचिका दायर की गई, यानी, इस न्यायालय के फ़ैसले के एक महीना के अन्दर और उसी दिन सभी सुसंगत दस्तावेज़ों के साथ सम्बंधित कार्यकर्ताओं को आपेक्षित क्षेत्राधिकार का उपयोग करने हेतु अग्रसारित किया गया. अगरचे दया याचिका के निष्पादन का कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती, (फिर भी) इस मामले में 3 वर्ष 10 महीने की अवधि, ऐसी दया याचिका को निस्तारित करने में लगना "ग़ैर मामूली विलम्ब" की व्याख्या के अंतर्गत आता है. यह विलम्ब याची की वजह से नहीं है या उसके

या उसके तरफ से किसी कार्रवी... के नतीजे में नहीं हुई, लेकिन निश्चित रूप से सम्बंधित कार्यकारी और प्राधिकारियों के तरफ़ से हुई है। (पारा 9) (450-बी-ई)

त्रिवेणी बनाम स्टेट औफ गुजरात (1998) 1 एससीसी 678: 1989 (1) एससीआर 509--- अनुसरित.

टी.व्ही. वथीस्वरन् बनाम स्टेट औफ तमिलनाडू 1983 (2) एससीसी 344; शत्रुघ्न चौहान अन्य बनाम यूनियन औफ इंडिया एंव अन्य 2014 (1) एससीएएलइ 437--- अवलम्बित.

2. आगे अधिक, याची मौत की सज़ा पाने के दिन से ही लगातार एकांत क़ैद में रहा. याची "इलाहदगी" में नहीं (रखा जा सकता) जब तक उसकी दया याचिका का निष्पादन नहीं हो जाता. ऐसी सिर्फ (दया याचिका) निष्पादित होने के बाद ही कहा जा सकता है कि वह अंतिम रूप से स़ज़ा ए मौत पर अमल करने के अधीन हो गया। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित क़ानून का बल्कुल ही पालन नहीं किया गया, जब याची को प्रथम न्यायालय द्वारा दिए गए मृत्यु दण्ड (के दिन ही से) एकांत क़ैद में रखा गया। यह याची को बे-हिसाब क्षति कारित करते हुए संविधान के अनुच्छेद 21 का मुकम्मल उल्लंघन है। (पारा 10) (450-एफ; 451 जी-एच)

सुनील बात्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1978) 4 एससीसी 494..1979 (1) एससीआर 392--अवलम्बित निर्णय.

3. दया याचिका के निष्पादन में ग़ैर मामूली विलंब और इस प्रकार के लम्बी अवधि तक एकांत क़ैद का प्रभाव प्रिय अधिकार से वंचित करने का कारण बनता है. निश्चय ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इन्साफ़ की नज़र में एक उचित मामला बनता है, आवेदक को सांत्वना पहुंचाने के लिए. परिणामतः मृत्यु दण्ड को बदलते हुए उसके एवज़ में उम्र-क़ैद की सज़ा दी गई. (पारा 1) (452-ए-बी)

<u>निर्दिष्ट क़ानूनी निर्णय</u>

2014 (1) एससीएएलई 437	**अवलम्बित**	**पारा 5**
1983 (2) एससीआर 348	**अवलम्बित**	**पारा 8**
1983 (2) एससीआर 344	**अवलम्बित**	**पारा 8**
1989 (1) एससीआर 509	**अनुसरित**	**पारा 8**
1979 (2) एससीआर 392	**अवलम्बित**	**पारा 10**

मूल अपराधिक क्षेत्राधिकार.. रिट पिटीशन (अपराधिक) संख्या 128 वर्ष 2014.

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 अंतर्गत.

याचिकाकर्ता(ओं) की ओर सेः- उर्मिला सूरी (ए.सी.).

उत्तरवादी की ओर सेः- रतन कुमार चौधरी, बीनू टमटा, सुषमा सूरी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति, उदय उमेश ललित ने दिया.

न्यायमूर्ति, उदय उमेश ललित.1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस याचिका में प्रार्थना की गई है कि वर्तमान याचिकाकर्ता पर लगाई गई मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया जाए, जिसके कारणों का विस्तार से वर्णन इसके बाद नकिया जा रहा है। 2. सत्र परीक्षण संख्या 67/2005 में, सीबीआई, रांची के विशेष न्यायाधीश की अदालत ने अपने दिनांक 09.04.2007 के निर्णय और आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को मृत्युदंड की सजा सुनाई थी। मृत्यु संदर्भ संख्या 3/2007 और याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील के परिणामस्वरूप मामला झारखंड उच्च न्यायालय पहुंचा। उच्च न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया और अपने दिनांक 28.08.2007 के निर्णय और आदेश द्वारा मृत्युदंड की पुष्टि की, जिसे इस न्यायालय में आपराधिक अपील संख्या 1295-96/2007 के माध्यम से चुनौती दी गई। इस न्यायालय ने निचली अदालतों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की और 16.03.2010 को अपील को खारिज कर दिया। इस प्रकार याचिकाकर्ता को दी गई मृत्युदंड की सजा 16.03.2010 को पुष्टि हो गई।

3. याचिकाकर्ता, जो पूरे समय जेल में था, ने 10.04.2010 को भारत के राष्ट्रपति और झारखंड के राज्यपाल को संबोधित दया याचिकाएँ प्रस्तुत कीं। दया याचिकाएँ बिरसा मुंडा केंद्रीय कारागार, रांची के अधीक्षक द्वारा 10.04.2010 को ही उचित अधिकारियों को भेज दी गईं। कथित अग्रेषण पत्र में निम्नलिखित दस्तावेज संलग्न थे:

“1. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दया याचिका - एक पृष्ठ।

2. अतिरिक्त न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश सीबीआई रांची के आदेश की प्रति- 48 पृष्ठ।

3. माननीय झारखंड उच्च न्यायालय, रांची के आदेश की प्रति - 25 पृष्ठ।

4. माननीय सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिका - 33 पृष्ठ।

5. माननीय सर्वोच्च न्यायालय का आदेश - 8 पृष्ठ।

6. जेल मैनुअल के नियम 923(III) की प्रति -3 पृष्ठ”

4. 27.01.2014 को झारखंड सरकार के गृह मंत्रालय के विशेष कार्य अधिकारी से बिरसा मुंडा केंद्रीय कारागार के अधीक्षक को एक संदेश प्राप्त हुआ कि दया याचिका भारत के राष्ट्रपति द्वारा खारिज कर दी गई है, जिसे भारत सरकार, गृह मंत्रालय ने अपने पत्र दिनांक 08.11.2013 के माध्यम से सूचित किया। इस प्रकार, याचिकाकर्ता को लगभग तीन वर्ष और 10 महीने बाद 10.04.2014 को दायर की गई उसकी दया याचिका के निपटारे का परिणाम सूचित किया गया।

5. इन परिस्थितियों में यह याचिका पेश की गई है। शत्रुघ्न चौहान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य1 में इस न्यायालय के निर्णय का अवलमंबन लेते हुए यह दलील दी गई कि उसकी दया याचिका के निपटारे में अत्यधिक देरी के कारण, मृत्युदंड को आजीवन कारावास में बदल दिया जाए। यह भी दलील दी गई कि मृत्युदंड दिए जाने के दिन से यानी 09.04.2007 से ही याचिकाकर्ता को एकांत क़ैद में रखा गया है।

6. शत्रुघ्न चौहान1 (सुप्रा- ऊपर) में इसी तरह की परिस्थितियों में अनुच्छेद 32 के तहत याचिका की स्वीकार्यता से संबंधित मुद्दे पर विचार करते समय , यह मुशाहिदा किया गया कि इसमें चुनौती मृत्युदंड अधिरोपण वाले अंतिम फैसले के संबंध में नहीं थी, बल्कि मृत्युदंड की पुष्टि के बाद घटित होने वाली पर्यवेक्षणित परिस्थितियों या घटनाओं पर आधारित थी। अपने कुछ पहले के निर्णयों पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय ने अनुच्छेद 32 के तहत ऐसी याचिकाओं को स्वीकार्य निर्धारित किया।

7. वर्तमान याचिका में चुनौती उस फैसले के संबंध में भी नहीं है जिसमें मृत्युदंड का न्यायिक दिया गया है, बल्कि बाद की परिस्थितियों पर ध्यान केंद्रित किया गया है, जिन पर सजा कम करने के मामले के समर्थन का अवलंबन लिया गया है। वर्तमान याचिका को विचारणीय मानते हुए, हम अब दया याचिका के निपटारे में देरी और एकांत क़ैद के प्रभाव के बारे में प्रस्तुतियों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं,जैसा चित्रफलक किया गया है। मृत्युदंड के निष्पादन में देरी और परिणामी प्रभाव पर विचार करते समय, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि दया याचिकाएँ उसी दिन जेल अधिकारियों द्वारा मामले से मुतअल्लिक़ सभी सुसंगत फ़ैसलों को संलग्न करते हुए अग्रेषित की गई थीं। दया याचिका के निपटारे और उस पर निर्णय की सूचना देने में 3 साल और 10 महीने का समय पूरी तरह से संबंधित अधिकारियों और पदाधिकारियों से तअल्लुक़ रखाती हैं।

8. यह प्रश्न कि क्या मृत्युदंड के निष्पादन में देरी ऐसी सजा को आजीवन कारावास से प्रतिस्थापित करने के लिए पर्याप्त आधार या कारण हो सकती है, इस न्यायालय का ध्यान काफी समय से आकर्षित कर रहा है। इनमें से कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं:

(ए) टीवी वथीश्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य2 में, मृत्युदंड की पुष्टि करने वाले उच्च न्यायालय के फैसले से उत्पन्न अपील में, इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि अपीलकर्ता

को आठ साल पहले पहली अदालत द्वारा मृत्युदंड दिया गया था। कुछ पहले के मामलों का हवाला देने के बाद, जहां अपीलीय कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान इस तरह की देरी पर विचार किया गया, यह देखा गया:

"20. ..... संयुक्त राज्य अमेरिका में जहां शीघ्र सुनवाई का अधिकार एक संवैधानिक रूप से गारंटीकृत अधिकार है, शीघ्र विचारण से इन्कार, निर्धारित किया गया कि, अभियुक्त के कलंक को रद्द करने या सजा को उठा लेने का हकदार बनाता है (स्ट्रंक बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका [1973] 37 एल.एड. 56 देखें)। अमेरिकी कानून का सादृश्य स्वीकार्य नहीं है, लेकिन हमारे संविधान की व्याख्या करते हुए, जैसा कि हम करने के लिए बाध्य हैं, हमें यह मानने में कोई बाधा नहीं मिलती है कि मौत की सजा के निष्पादन में लंबे समय तक देरी के अमानवीय कारक का संवैधानिक पहलू एक व्यक्ति को उसके जीवन से अन्यायपूर्ण, अनुचित और ग़ैरमुंसिफ़ानी तरीके से वंचित करना है, जो संवैधानिक गारंटी का उल्लंघन करता है कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

21..... अपील और स्थगन पर विचार के लिए आवश्यक समय के लिए सभी उचित छूट देते हुए, हम सोचते हैं कि मृत्युदंड की सजा के निष्पादन में दो साल से अधिक की देरी को (1983) 2 एससीसी 68 मृत्युदंड के तहत व्यक्ति को अनुच्छेद 21 का आह्वान करने और मृत्युदंड की सजा को रद्द करने की मांग करने का अधिकार देने के लिए पर्याप्त माना जाना चाहिए। इसलिए हम विशेष अनुमति याचिका को स्वीकार करते हैं, अपील और रिट याचिका को भी स्वीकार करते हैं और मृत्युदंड को रद्द करते हैं। मृत्युदंड की सजा के स्थान पर, हम आजीवन कारावास की सजा को प्रतिस्थापित करते हैं।"

(बी) शेर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य3 एक ऐसा मामला था जिसमें इस न्यायालय द्वारा अपील और समीक्षा याचिका को खारिज करके मृत्युदंड की पुष्टि की जा चुकी थी। वथीश्वरन (सुप्रू-ऊपर) में टिप्पणियों पर भरोसा करते हुए , निष्पादन में देरी को भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक याचिका में आधार के रूप में पेश किया गया था । हालाँकि न्यायालय वथीश्वरन (सुप्रा) में टिप्पणियों से मोटे तौर पर सहमत था, लेकिन यह इस कथन से सहमत नहीं था कि "...मृत्युदंड के निष्पादन में दो साल से अधिक की देरी को मृत्युदंड के तहत व्यक्ति को अनुच्छेद 21 का आह्वान करने और मृत्युदंड पर सवाल उठाने का अधिकार देने के लिए पर्याप्त माना जाना चाहिए।" हालाँकि दया याचिकाओं और उससे संबंधित शक्ति के प्रयोग के संदर्भ में, पैरा 23 में निम्नलिखित रूप में देखा गया:

"23. हमें इस अवसर पर भारत सरकार और राज्य सरकारों को यह समझाना चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 और 433 के तहत दायर याचिकाओं का निपटारा शीघ्रता से किया जाना चाहिए। कार्यकारी अधिकारियों को एक स्व-लगाए गए नियम का सख्ती से पालन करना चाहिए, कि ऐसी प्रत्येक याचिका का

निपटारा उसके प्राप्त होने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर किया जाना चाहिए। इन याचिकाओं के निपटारे में लंबी और अंतहीन देरी न्याय के वितरण में एक गंभीर बाधा है और वास्तव में, ऐसी देरी न्याय की प्रणाली में लोगों के विश्वास को हिला देती है। ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनका इस न्यायालय का रिकॉर्ड गवाही देगा, जिसमें राज्य सरकारों और भारत सरकार के समक्ष याचिकाएँ बहुत लंबी अवधि से लंबित हैं। .....

निस्संदेह, कार्यपालिका के पास, उचित मामलों में, उपरोक्त प्रावधानों के तहत कार्य करने की शक्ति है, लेकिन, अगर हम याद दिला सकें, तो शक्ति का हर प्रयोग निष्पक्ष और त्वरित होने के कर्तव्य से पूर्व निर्धारित है। देरी न्याय को पराजित करती है।"

(सी) इस मुद्दे को त्रिवेणीबेन बनाम गुजरात राज्य4 में संविधान पीठ के फैसले द्वारा सुलझाया गया था , जहां यह निष्कर्ष निकाला गया था कि "मृत्यु दंड को निष्प्रभावी बनाने के लिए देरी की कोई निश्चित अवधि नहीं मानी जा सकती है...।" ऐसे मामलों में अधिकार क्षेत्र के प्रयोग का दायरा और दायरा पैरा 22 में इस प्रकार दर्शाया गया है:

"22. एकमात्र अधिकार क्षेत्र जिसका प्रयोग कैदी अपने अधिकारों के उल्लंघन के लिए कर सकता है, वह अंतिम न्यायिक निर्णय सुनाए जाने के बाद की घटनाओं को चुनौती देना हो सकता है और इसी कारण से लंबी या अत्यधिक देरी के आधार पर एक सजायाफ्ता कैदी इस न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है और यही बात इस न्यायालय द्वारा लगातार कही गई है। लेकिन अनुच्छेद 32 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय के लिए यह खुला नहीं होगा कि वह सक्षम न्यायालय द्वारा सजा सुनाए जाने और दोषी ठहराए जाने तथा यहां तक कि परिस्थितियों पर विचार करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि क्या अत्यधिक देरी के साथ-साथ बाद की परिस्थितियों को इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है कि मृत्युदंड का निष्पादन न्यायसंगत और उचित नहीं होगा। अपराध की प्रकृति, जिन परिस्थितियों में अपराध किया गया था, उन्हें अंतिम निर्णय सुनाते समय सक्षम न्यायालय द्वारा पाया जाना चाहिए। अंतिम निर्णय सुनाए जाने के बाद किसी भी परिस्थिति की जांच या विचार करना न्यायालय के लिए भी खुला हो सकता है, यदि इसे प्रासंगिक माना जाता है। अंतिम फैसले के बाद कैदी के आचरण में सुधार के सवाल पर भी इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विचार नहीं किया जा सकता कि क्या उस आधार पर भी सजा में बदलाव किया जा सकता है।"

(घ) शत्रुघ्न चौहान (सुप्रा-ऊपर) मामले में मृत्युदंड के निष्पादन में देरी और परिणामी प्रभाव, साथ ही शक्ति के प्रयोग के दायरे और दायरे के संबंध में कानून पर विचार करने के बाद, पैरा 38, 41 और 42 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई थी:-

"38. उपरोक्त के मद्देनजर, हम मानते हैं कि मौत की सज़ा के निष्पादन में अनावश्यक रूप से देरी से दोषी कैदी को अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय में जाने का अधिकार होगा । हालाँकि, यह न्यायालय केवल उन परिस्थितियों की जाँच करेगा जो देरी के कारण हुई हैं और जो न्यायिक प्रक्रिया द्वारा अंतिम रूप से सजा की पुष्टि होने के बाद हुई हैं। यह न्यायालय पहले से ही पहुँच चुके निष्कर्ष को फिर से नहीं खोल सकता है, लेकिन यह तय करने के लिए अत्यधिक देरी के सवाल पर विचार कर सकता है कि क्या सजा का निष्पादन किया जाना चाहिए या इसे आजीवन कारावास में बदल दिया जाना चाहिए।

41. यह स्पष्ट है कि न्यायिक प्रक्रिया पूरी होने के बाद यदि दोषी राज्यपाल/राष्ट्रपति के समक्ष दया याचिका दायर करता है तो प्राधिकारियों का यह दायित्व है कि वे उसका शीघ्रता से निपटारा करें।हालांकि राज्यपाल और राष्ट्रपति के लिए कोई समय सीमा तय नहीं की जा सकती, लेकिन कार्यपालिका का यह कर्तव्य है कि वह हर चरण में मामले को तेजी से निपटाए, जैसे कि न्यायालय में दाखिल किए गए रिकॉर्ड, आदेश और दस्तावेज मंगाना, संबंधित मंत्री की मंजूरी के लिए नोट तैयार करना और संवैधानिक अधिकारियों का अंतिम निर्णय। त्रिवेणीबेन (सुप्राभ-ऊपर) में इस न्यायालय ने आगे कहा कि ऐसा करते समय, यदि यह स्थापित हो जाता है कि मृत्युदंड के निष्पादन में बहुत देरी हुई है, तो यह निर्धारित करने के लिए एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक विचार है कि सजा को निष्पादित करने की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं।

42. तदनुसार, यदि दया याचिकाओं के लंबित रहने के कारण निष्पादन में अनुचित, अस्पष्टीकृत और अत्यधिक देरी होती है या कार्यकारी और साथ ही संवैधानिक अधिकारी प्रासंगिक पहलुओं पर ध्यान देने/विचार करने में विफल रहे हैं, तो यह न्यायालय अनुच्छेद 32 के तहत अपनी शक्तियों के भीतर दोषी की शिकायत सुनने और केवल इस आधार पर मृत्युदंड को आजीवन कारावास में बदलने के लिए पूरी तरह से सक्षम है, हालांकि, केवल तभी जब यह संतुष्टि हो कि देरी अभियुक्त के स्वयं के कहने पर नहीं हुई थी। इस हद तक, न्यायशास्त्र हमारे संविधान में दिए गए जनादेश के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी किए गए विभिन्न सार्वभौमिक घोषणाओं और निर्देशों के आलोक में विकसित हुआ है।"

9. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में , वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए। 09.04.2007 को ट्रायल कोर्ट द्वारा सुनाई गई मौत की सजा 16.03.2010 को इस न्यायालय द्वारा अपीलों को खारिज करने के साथ ही अंतिम रूप ले ली। याचिकाकर्ता की ओर से समीक्षा याचिका आदि के रूप में आगे कोई कार्यवाही नहीं की गई। 10.04.2010 को यानी इस न्यायालय के निर्णय के एक महीने के भीतर दायर की गई उनकी दया याचिका को सभी प्रासंगिक दस्तावेजों के साथ उसी दिन अग्रेषित कर दिया गया ताकि संबंधित अधिकारियों को अपेक्षित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में सक्षम बनाया जा सके। हालांकि

दया याचिका का निपटारा करने के लिए कोई समय सीमा तय नहीं की जा सकती है, लेकिन हमारे विचार से वर्तमान मामले में ऐसी दया याचिका से निपटने के लिए 3 वर्ष और 10 महीने की अवधि "अत्यधिक देरी" की श्रेणी में आती है। यह विलम्ब याचिकाकर्ता के कारण या उसके द्वारा या उसकी ओर से शुरू की गई किसी कार्यवाही के परिणामस्वरूप नहीं हुआ है, बल्कि निश्चित रूप से संबंधित पदाधिकारियों और प्राधिकारियों के कारण हुआ है।

10. इसके अलावा, जैसा कि याचिका में प्रस्तुत किया गया है, याचिकाकर्ता को हमेशा एकांत क़ैद में रखा गया है, अर्थात उस दिन से जब उसे मृत्युदंड दिया गया था। जेल अधिनियम, 1894 की धारा 30(2) से निपटते हुए, जो मृत्युदंड की सजा के तहत व्यक्ति को अलग रखने का प्रावधान करती है, सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन 5 में न्यायमूर्ति,कृष्ण अय्य ने संप्रेक्षित किया:

“ धारा 30(2) के तहत महत्वपूर्ण निर्णय यह है कि कोई व्यक्ति 'मृत्यु दंड के अधीन' नहीं है, भले ही सत्र न्यायालय ने उसे उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के अधीन मृत्यु दंड की सजा सुनाई हो। वह 'मृत्यु दंड के अधीन' नहीं है, भले ही उच्च न्यायालय पुष्टि या नए अपीलीय दंड द्वारा मृत्यु दंड अधिरोपित करे, जब तक कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील किए जाने की संभावना है या अपील की जा चुकी है या लंबित है। भले ही इस न्यायालय ने मृत्यु दंड दिया हो, धारा 30 उसे तब तक कवर नहीं करती है जब तक कि राज्यपाल और/या राष्ट्रपति को संविधान द्वारा प्रदत्त, संहिता और जेल नियमों द्वारा अनुमत दया के लिए उसकी याचिका का निपटारा नहीं हो जाता। बेशक, एक बार राज्यपाल और राष्ट्रपति द्वारा खारिज कर दिए जाने के बाद, और आगे के आवेदन पर प्राधिकारियों द्वारा निष्पादन पर कोई रोक नहीं लगाई जाती है, तो वह 'मृत्यु दंड के अधीन' है, भले ही वह आगे दया याचिकाएँ लगाता रहे। उस (दो शासनों के बीच का काल) अंतराल के दौरान वह धारा 30(2) में निर्दिष्ट हिरासत एकांत-अलगाव को आकर्षित करता है , जो प्रावधान को सौंपे गए सुधारात्मक अर्थ के अधीन है। 'मृत्युदंड के तहत' का अर्थ है 'अंतिम रूप से निष्पादन योग्य मृत्युदंड के तहत होना।'

सहमत निर्णय में बहुमत की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति डी.ए. देसाई ने कहा:

धारा 30 की उपधारा (2) के संदर्भ में "मृत्यु दंड के तहत कैदी" का अर्थ केवल वह कैदी हो सकता है जिसकी मृत्यु दंड की सजा अंतिम, निर्णायक और अपरिवर्तनीय हो गई है जिसे किसी भी न्यायिक या संवैधानिक प्रक्रिया द्वारा रद्द या निरस्त नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यह एक ऐसी सजा होनी चाहिए जिसे निष्पादित करने और लागू करने का कर्तव्य सौंपे गए प्राधिकारी को किसी बाहरी प्राधिकारी के हस्तक्षेप के बिना निष्पादित करना चाहिए... इस न्यायालय द्वारा कानून के प्रवर्तन की रौशनी में, याचिकाकर्ता को उसकी दया याचिका के निपटारे तक कभी भी "अलग" नहीं किया जा सकता था। इस तरह के निपटान के बाद ही उसे

अंतिम रूप से निष्पादन योग्य मृत्यु दंड के तहत कहा जा सकता है। प्रथम न्यायालय द्वारा मृत्यु दंड के आदेश के बाद से याचिकाकर्ता को एकांत कारावास में रखने के दौरान इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का बिल्कुल भी पालन नहीं किया गया। हमारे विचार में, यह संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार का पूर्ण उल्लंघन है जिससे याचिकाकर्ता को अपूरणीय क्षति हुई है।

10. दया याचिका के निपटारे में अत्यधिक देरी और इतने लंबे समय तक एकांत कारावास के संयुक्त प्रभाव ने, हमारे विचार से, सबसे प्रिय अधिकार से वंचित किया है। यह मामला निश्चित रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत बनता है और यह न्यायालय न्याय के उद्देश्य के लिए याचिकाकर्ता तक पहुंचना और उसे सांत्वना देना उचित समझता है। इसलिए, हम सजा को कम करते हैं और याचिकाकर्ता को दी गई मौत की सजा के स्थान पर आजीवन कारावास की सजा देते हैं। इस प्रकार रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

कल्पना के. त्रिवाठी रिट पिटीशन स्वीकृत

यह अनुवाद मो. अशरफ हुसैन अंसारी (पैनल अनुवादक) के द्वारा किया गया।